राजस्थान में बाल विवाह

– नीतिका ठोलिया
शोधार्थी,
समाज शास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश :

बाल विवाह एक विश्व व्यापी समस्या है जिसके दुष्प्रभाव प्रायः विकासशील देशों में अधिक समस्याकारी बनते हैं जहां शिशु जन्म पर शिशु या माता अथवा दोनों की मृत्यु होना सामान्य समस्या है। एक की कमी और बीमारियाँ विभिन्न समस्याओं को आसरा देती है। यूनीसेफ द्वारा किए गए सर्वेक्षणों के आधार पर भारत में पचास प्रतिशत विवाह निर्धारित आयु से पूर्व हो जाते हैं। इसमें बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ व राजस्थान में बाल विवाह बड़ी मात्रा में होते है जो बीमारू राज्य कहे जाते हैं। सरकार द्वारा कानून बनने के पश्चात भी बाल विवाह रोके नहीं जा सके हैं।

_____

बाल विवाह एक ऐसी स्थिति है जहां सरकार द्वारा लड़के व लड़की की विवाह योग्य आयु क्रमशः इक्कीस व अठारह वर्ष से कम आयु में विवाह कर दिए जाते हैं। बहुत से विवाह बच्चों के इतनी छोटी उम्र में ही कर दिए जाते हैं जहां उनके माता या पिता गोद में लेकर अग्नि के सात फेरे लगवाते हैं। विवाह के लिए धार्मिक व सामाजिक परम्पराएं धर्म और जाति में प्रचलित प्रथाओं के आधार पर अपनायी जाती हैं। इससे हिन्दू विवाह घर के द्वार पर आने पर कन्या द्वारा वरमाला पहनाने से विवाह मान लिया जाता है किन्तु सांस्कृतिक रीति रिवाज अग्नि के समक्ष आहुतिया देने और अग्नि के चारों ओर सात फेरे लगाकर पूरे माने जाते हैं।

विवाह एक सांस्कृतिक स्थिति है, जिसे प्रत्येक धर्म में निर्धारित विधियों का पालन करते हुए विवाह सम्पन्न होता है। यह दो परिवारों के मध्य लड़के व लड़की के निर्धारित जुड़ाव का तरीका है, जिसकी पालना निर्धारित परम्पराओं के अनुसार पूरी की जाती हैं। वैदिक काल के उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर मानव जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया गया था, जो ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम व सन्यास आश्रम कहे जाते थे। बालक को आठवें वर्ष में पढ़ने के लिए गुरु के आश्रम भेजा जाता था जहां बारह वर्ष अध्ययन काल रखा जाता था। इसके पश्चात् घर लौटने पर परिवार जन उसके विवाह के बारे में सोचते थे। प्रायः विवाह लड़के की 25 वर्ष की आयु के पश्चात् किया जाता था।[1]

लड़के व लड़की की विवाह योग्य आयु में प्रायः तीन से पांच वर्ष का अन्तर रखा जाता था, इस आधार पर लड़की की आयु भी विवाह के समय अठारह से बीस वर्ष के मध्य रहती थी। गृहस्थ आश्रम 25 से 50 वर्ष की आयु का माना जाता था। विवाह की आयु घटते जाने का क्रम ईसा पूर्व चार सौ वर्ष माना जाता है, जिसके लिए शक्तिशाली राज्यों के समाप्त होने से यवनों के आक्रमण के कारण होने वाली

दुर्दशा के आधार पर बाल विवाह की परम्परा चल पड़ी। राजा के हारने के पश्चात विजेता सेना द्वारा जनता के साथ लूटपाट व महिलाओं व लड़कियों से अत्याचार की घटनाएं इसके लिए प्रमुख कारण मानी जाती हैं। आतंकवादियों द्वारा पीड़ित लड़के के विवाह में समस्याएं आने से कम आयु में विवाह करके अपना कर्त्तव्य पालन मान लेते थे।[2]

कम आयु में लड़की के विवाह किए जाने के पक्ष में धर्मग्रंथों के प्रसंगों को उद्धत कर बाल विवाह के लिए भिन्न भिन्न तरीके बतलाए गए। इसमें गृह्यसूत्र के अनुसार विवाह के समय लड़की को नग्निका होना चाहिए। नग्निका का विवरण उक्त ग्रंथ में नहीं होने पर ऋषि पाराशर को उद्धत कर आठ वर्ष की लड़की को नग्निका बताया गया जबकि मातृदत्त में नग्निका कन्या पति द्वारा एकान्त में नग्न की जाने योग्य हो, जिसे यौवनावस्था से भी जोड़ा गया। महाभारत में सोलह वर्ष की कन्या को नग्निका कहा गया। आयु के अनुसार लड़की के नामों में आठ वर्ष से कम की कन्या को नग्निका, आठ वर्ष की लड़की को गौरी, नौ वर्ष की लड़की को रोहिणी, दस वर्ष की लड़की को कन्या, दस वर्ष से अधिक आयु की लड़की को रजस्वला कहा गया।[3]

शास्त्रीय विचारधारा इस बात की पक्षधर थी कि लड़की का विवाह यौन परिपक्वता पूर्व ही सम्पन्न होना चाहिए। इस विचारधारा के तीन कारक माने गए हैं जो कौमार्य सिद्धान्त, संस्कार सिद्धान्त और स्त्री आधिपत्य सिद्धान्त कहे गए है। महाकाव्येत्तर काल में लड़की का कौमार्य उसका सर्वोच्च गुण माता जाने लगा और सम्मान का सूचक भी बन गया। समाज के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने और लड़की को कौमार्य भंग होने की समस्या से बचाने के लिए ब्राह्मणों ने समय पूर्व विवाह की रचना कर डाली। संस्कार सिद्धान्त जन्म से मृत्यु तक चलते हैं जो जीवन की शुद्धि और उच्च जीवन के समारम्भ के लिए सम्पन्न किए जाते हैं। अधिपत्य सिद्धान्त विवाह पूर्व पिता का अधिपत्य, विवाह पश्चात पति का अधिपत्य और विधवा होने पर पुत्र का अधिपत्य बताया गया।[4]

विवाह एक उपयुक्त आयु से पहले करने के अनेक दुष्परिणाम होते हैं जिनके कारण विवाह सामान्य निर्धारित आयु में ही किए जाने आवश्यक माने गए। कम आयु की लड़की विवाह पश्चात् शीघ्र शिशु जन्म के दुष्परिणामों की शिकार हो जाती है, जिससे विभिन्न प्रकार की शारीरिक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जो महिला और उसकी कमजोर सन्तान के जीवन के लिए घातक मानी गयी हैं। कमजोर सन्तान व माताएं देश के लिए अभिशाप बनते हैं जो प्रायः बीमार रहने से वे परिवार सम्बन्धी दायित्व पूरे नहीं कर पाते जो उनसे अपेक्षित माने जाते हैं। स्वस्थ माता और स्वस्थ पुत्र ही देश के विकास में भागीदार बनते है।

जनगणना रिपोर्ट 1921 के अनुसार एक वर्ष से कम आयु की 612 विधवाए थीं, पांच वर्ष से कम आयु की विधवाओं की संख्या 2024 थी, दस वर्ष से कम आयु की 97857 विधवाएं थी तथा पन्द्रह वर्ष से कम आयु की देश में 332024 विधवाएं थी। ये सभी हिन्दू विधवाएं इसलिए दर्शायी गई कि हिन्दू समाज

में विधवा विवाह को समाज द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता था। इसके विपरीत समाज के लोग लड़की का विवाह यथाशीघ्र करके अपने दायित्व से मुक्त होना आवश्यक मानते थे। इस कारण बाल विवाह का प्रचलन समाज में व्याप्त था। लोग इसे बुराई भी मानते थे क्योंकि ऐसे युगलों के लिए बाद में जीवन यापन की गंभीर समस्याएं आती थी।[5]

ब्रिटिश शासन काल में बाल विवाह परम्पराओं के दुष्परिणामों को जानकर बाल विवाह रोकने के लिए जन जागरण व कानून बनाकर इस बुराई को दूर करने के प्रयास किए गए। बाल विवाह परम्परा को समाप्त करने के लिए ब्रह्म समाज, आर्च समाज जैसे जागरूक सामाजिक संगठनों ने जन आन्दोलन चलाकर जन जागरण के प्रयास किए और सरकार को बाल विवाह रोकने के लिए कानून बनाने के लिए प्रयास किए। इस दृष्टि से ईश्वर चन्द विद्यासागर का नाम उल्लेखनीय है। इसी क्रम में ब्रिटिश सरकार सामाजिक स्वरूप में हस्तक्षेप के लिए तैयार नहीं थी किन्तु विभिन्न कारणों से ब्रिटिश सरकार को इस बारे में विचार करना आवश्यक हुआ।

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय दण्ड संहिता अधिनियम 1860 में संशोधन करके दस वर्ष से कम आयु की लड़की का विवाह करना अपराध की श्रेणी में रखा गया। अधिनियम में यह व्यवस्था की गई थी कि दस वर्ष की कन्या से विवाह हो जाने की स्थिति में दस वर्ष से कम आयु की विवाहिता से संबंध कानूनी अपराध की श्रेणी में रखा गया। बाल गंगाधर तिलक ने इस कानून का विरोध किया किन्तु 1880 में घटित स्थिति में लड़की की विवाह की आयु बढ़ाने के बारे में विचार करना आवश्यक हो गया। इस वर्ष फूलमणि नामक ग्यारह वर्ष की विवाहिता से उसके पति द्वारा किया गया शारीरिक कृत्य बलात्कार से भी भीषण संकटकारी था, जिससे विवाहिता की मृत्यु हो गई थी।

इस घटना में समाज को पूरी तरह झकझोर दिया तथा पांच सौ महिला चिकित्सकों ने एक ज्ञापन पर हस्ताक्षर करके वायसराय को प्रस्तुत किया जिसमें लड़की की विवाह योग्य आयु चौदह वर्ष करने और पूर्व विवाहिताओं के शारीरिक संसर्ग बारह वर्ष से कम आयु तक निबिद्ध रखे गए। इनके परिणाम स्वरूप हिन्दू बाल विवाह अधिनियम 1927 पारित किया गया जिसमें लड़के की न्यूनतम आयु पन्द्रह वर्ष व लड़की की न्यूनतम विवाह योग्य आयु बारह वर्ष निर्धारित की गई। 1929 में हरबिलास शारदा ने विधेयक प्रस्तुत किया जिसमें लड़के की न्यूनतम विवाह योग्य आयु अठारह वर्ष और लड़की की आयु पन्द्रह वर्ष रखी गई। इसे शारदा एक्ट के नाम से जाना गया।[6]

1929 के अधिनियम में 1949 में संशोधन करके विवाह योग्य आयु लड़की की चौदह से बढ़ाकर पन्द्रह वर्ष कर दी गई। 1978 में अधिनियम में पुनः संशोधन करके लड़की की न्यूनतम विवाह योग्य आयु पन्द्रह वर्ष से बढ़ाकर अठारह वर्ष तथा लड़के की आयु अठारह से बढ़ाकर इक्कीस वर्ष कर दी गई। विवाह की आयु वर्तमान तक यथावत बनी हुई है। इसके पश्चात् बाल विवाह निरोधक अधिनियम 2006 द्वारा बाल विवाह समाप्त करने के तरीके तथा अधिनियम लागू करने के तरीके वर्णित किए गए। जहां

बाल विवाह निरोधक अधिकारी को शिकायत भेजने पर बाल विवाह रोकने की कार्यवाही की जाने की व्यवस्था की गई।[7]

राजस्थान में बाल विवाह की गंभीरता के बारे में संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय बाल आपदा कोष (यूनीसेफ) द्वारा किए गए सर्वेक्षण (2007–08) के अनुसार राजस्थान में बाल विवाह की संख्या 57.6 प्रतिशत थी जहां पूरे देश में 50 प्रतिशत बाल विवाह होने की स्थिति दर्शयी गई थी। इसमें कर्नाटक, आंधप्रदेश, मध्यप्रदेश पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, राजस्थान व बिहार राज्य 50 प्रतिशत से अधिक बाल विवाह वाले राज्य बताए गए। हिमाचल प्रदेश में 9.1 प्रतिशत बाल विवाह की दर बताई गई थी। इस सर्वेक्षण से देश में बाल विवाह की समस्या की गंभीरता व आर्थिक विकास में पड़ने वाले प्रभावों का आकलन करना संभव बताया गया है।[8]

सेन्टर फार सोशल रिसर्च नई दिल्ली व नेशनल इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक कोआपरेशन एण्ड चाइल्ड डवलपमेन्ट नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में बाल विवाह पर 2008 में प्रकाशित सर्वेक्षण रिपोर्ट में राजस्थान, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के बाल विवाह की समस्या का विवेचन किया गया। इसमें राजस्थान में डूंगरपुर में 34.4 प्रतिशत बाल विवाह की दर बताई जो न्यूनतम है तथा आदिवासी जिला होने पर बड़ी सीमित स्थिति रखना बताया गया है। जबकि बूंदी में 80.6 प्रतिशत बाल विवाह होना दर्शाया गया है। दस सर्वाधिक बाल विवाह से प्रभावित जिले बीकानेर (63.7:), बांसवाड़ा (65.8:), नागौर (67.2:), चुरू (68.0:), उदयपुर (69.6:), दौसा (71.6:), झालावाड़ (74.2:), भीलवाड़ा (76.2:), टोंक (78.3:) तथा बूंदी (80.6:) हैं।[9]

बाल विवाह निषेध अधिनियम 1929 में बाल विवाह करने वाले परिवारों पर सजा का प्रावधान रखा गया जो बढ़ाकर दो माह तक किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त एक हजार रूपये का अर्थदण्ड व दोनों सजाएं देने की स्थिति भी दर्शायी गई थी। इस अधिनियम को निष्प्रभावी करके बाल विवाह निरोधक अधिनियम 2006 लागू किया गया जिसमें परस्पर सहमति से बाल विवाह विच्छेद का प्रावधान रखा गया जिसमें बाल विवाह निरोधक अधिकारी की सहमति से दोनों पक्ष न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर विवाह समाप्त कर सकते थे किन्तु महिला व बच्चों को न्यायालय द्वारा निर्धारित धनराशि देनी आवश्यक मानी गई।

बाल विवाह निरोधक अधिनियम 2006 के अन्तर्गत कोई व्यक्ति बाल विवाह की सूचना बाल विवाह निरोधक अधिकारी को देने पर विवाह रद्द करने की कार्यवाही की आने की व्यवस्था रखी गई। विवाह शहरी व ग्रामीण क्षेत्र दोनों में सम्पन्न किए जाते हैं किन्तु कोई व्यक्ति इन्हें रोकने के लिए जिला प्रशासन को सूचना नहीं देता, जिससे यह प्रथा बिना किसी विरोध या रोकटोक जारी है। सरकारी प्रशासन इस दिशा में कोई कार्यवाही नहीं करता जिससे बाल विवाहों को रोका जा सके। रोक–टोक के अभाव में बाल विवाह की परम्परा निरन्तर जारी है।

यहां प्रश्न यह उठता है कि स्वतंत्रता पूर्व एक घटना पर बहस से डॉक्टरों ने ज्ञापन देकर बाल विवाह रोकने की कार्यवाही की थी किन्तु आज कोई व्यक्ति टेलीफोन करके प्रशासन को सूचित करना भी उचित नहीं मानता जिससे बाल विवाह की बुराई को रोका जा सके। बाल विवाह निरन्तर जारी रहने और इसे रोकने के लिए जनता की उदासीनता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जन सामान्य बाल विवाह को बुराई नहीं मानता और उसे होने देने में कोई ऐसा कारण नहीं समझता जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति बाल विवाह रोकने के लिए प्रशासन तक अपनी आवाज पहुंचाए। इसे कर्त्तव्य विमुख या उदासीनता भी माना जा सकता है।

इसी प्रकार विवाह करना दो परिवारों के बीच का प्रकरण होता है जिसे वे शान्तिपूर्वक अपने रिश्तेदारों के साथ मिलकर समारोह पूर्वक सम्पादित करते है। इस कार्य द्वारा वे किसी को परेशान या बाधा नहीं पहुंचाते, जिससे किसी व्यक्ति के दुखी होकर प्रशासन तक पहुंचना आवश्यक माना जावे। समाज में लड़की का विवाह होना परिवार का उत्तरदायित्व मुक्त होना माना जाता है इसलिए कोई भी व्यक्ति यह जानते हुए भी कि बाल विवाह करना व होने देना अपराध है, स्वयं ऐसा कोई कार्य करना उपयुक्त नहीं मानता जिससे बाल विवाह रोका जा सके।

कानून की जानकारी पुलिस को रहती है, जिसे बाल विवाह होने की जानकारी रहती है और बाल विवाह करना अपराध होना जानकर भी पुलिस इस दिशा में कोई कार्यवाही नहीं करती, जबकि पुलिस कभी घटना स्थल पर पहुंचकर विवाह को रोकने की कार्यवाही कर सकती है। इसमें दोनों पक्षों व सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों को भी दो वर्ष की सजा का प्रावधान है। इन स्थितियों को दृष्टिगत रखकर बाल विवाह करने वाले दोनों परिवार यह सुनिश्चित करना आवश्यक मानते हैं कि बाल विवाह कार्यक्रम के दौरान किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं हो। इसके लिए परिवारों की बदनामी का भी डर रहता है और बाल विवाह बिना किसी बाधा के सम्पन्न हो जाते हैं।

इसी प्रकार इलाज व शिशु जन्म के लिए अस्पताल में भर्ती होने पर चिकित्सक या चिकित्सालय यह प्रश्न नहीं पूछता कि बाल विवाह वाला प्रकरण गैर कानूनी होने से वे इलाज कैसे कर सकते है। ऐसी स्थिति में विवाहिता को सरकारी चिकित्सा केन्द्रों पर मुक्त इलाज के साथ शिशु जन्म पर मिलने वाली सुविधाएं दी जाती हैं या खुर्द–बुर्द करदी जाती है यह भी एक विचारणीय विषय है। इसमें परस्पर यह स्थिति समझ ली जाती है कि अनियमित कार्य परस्पर भागीदारों से ही संभव हो सकते हैं और ऐसी भागीदारी का कोई लेखा जोखा नहीं रखा जाता या शिकायत की जाती है।

बाल विवाहों का निरन्तर बेरोक टोक जारी रहना और इसे रोकने के लिए सरकार या समाज के किसी वर्ग की कोई रूचि नहीं होना यह स्पष्ट करता है कि सामाजिक, राजनैतिक व प्रशासनिक दृष्टि से अधिकांश स्थितियां निरन्तर जारी रहती है, जिन पर किसी प्रकार की रोक लगाना व प्रभावी रूप से प्रथाएं समाप्त करना कोई आवश्यक कार्य नहीं है, जिसको करना सरकार या समाज आवश्यक समझे। इसलिए

बाल विवाह का निरन्तर जारी रहना और इसके समर्थकों का बाल विवाह करते रहना एक नियति बन कर रह गया है।

सन्दर्भ

1. राम आहूजा (2015), भारतीय समाज व्यवस्था, पृ.143–144
2. वीरेन्द्र प्रकाश (2005), भारतीय समाज, पृ.185–187
3. राम आहूजा (2015), भारतीय समाज व्यवस्था, पृ.143–150
4. के.एन. कापड़िया (1966), मेरिज एण्ड फेमिली इन इण्डिया, पृ.37–41
5. भारतीय जनगणना 1921
6. बी.एस. नेगी (1993), चाइल्ड मेरिज इन इण्डिया, पृ.8–9
7. बाल विवाह निरोधक अधिनियम 2006
8. यूनीसेफ रिपोर्ट 2007–08
9. सेन्टर फोर सोशल रिसर्च और नेशनल इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक को–आपरेशन (2008), नई दिल्ली।